अध्याय : सात

अध्याय : सात

हिंदी आलोचना के विकास में 'आलोचना' पत्रिका का योगदान

नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' पत्रिका का हिंदी आलोचना में क्या योगदान है, इस शोध कार्य के अलग-अलग अध्यायों में विभिन्न शीर्षकों के माध्यम से स्पष्ट किया जा चुका है। इसके बावजूद, 'आलोचना' के समग्र योगदान की अलग से चर्चा करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। इस अध्याय में, सामान्यतः उन्हीं बिंदुओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जिन पर पिछले अध्यायों की अलग-अलग प्रवृत्तियों के कारण सम्यक रूप से चर्चा नहीं हो पाई है, किंतु उनसे इस अध्ययन के समग्र एवं महत्त्वपूर्ण पक्ष उद्घाटित हो सकते हैं, उनसे 'आलोचना' पत्रिका के योगदान को और भी स्पष्ट ढंग से समझा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, इन अध्यायों में आए उन तथ्यों और निष्कर्षों को प्रस्तुत करेंगे जिससे 'आलोचना' पत्रिका का और नामवर सिंह के संपादन के महत्त्व को समग्रता में समझा जा सके।

हिंदी आलोचना के विकास में पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका कितनी निर्णायक रही है इस पर विश्वनाथ त्रिपाठी, नंदकिशोर नवल, निर्मला जैन, और मधुरेश जैसे हिंदी आलोचना के इतिहास लेखकों की प्रायः सहमति रही है। विश्वनाथ त्रिपाठी का मत है कि"भारतेंदु की ही भाँति प्रेमघन और भट्ट जी भी अनेक विषयों पर लेखनी चलाते थे, एवं पत्रकार और साहित्यकार थे।... इन्होंने अपने पत्रों में साहित्यिक कृतियों की भी समीक्षा की। हिंदी आलोचना का जन्म पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित इनकी इसी समीक्षा से हुआ।"[1] निर्मला जैन आधुनिक युग में पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन को 'बहुत बड़ी बात' के रूप में देखती हैं, और बीसवीं शताब्दी में पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की निरंतरता को 'अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना' मानती हैं। उनका मत है कि" 'सरस्वती के अतिरिक्त कुछ पत्र-पत्रिकाएँ पुस्तक-समीक्षा के ही उद्देश्य से प्रकाशित की गईं। 1902 ई0 में जयपुर से

'समालोचक' नामक पत्र का प्रकाशन आरंभ हुआ। माधव मिश्र पहले ही 1900 ई0 बनारस से 'सुदर्शन' निकाल चुके थे।... आरंभ में इन पत्रिकाओं में प्रकाशित होनेवाली पुस्तक-समीक्षाओं का स्वर परिचयात्मक था।... इस प्रकार के परिचयात्मक निबंधों के अतिरिक्त इसी समय प्राचीन और समसामयिक साहित्य पर कुछ मूल्यांकनपरक लेख भी सामने आए। ध्यान से देखा जाए तो हिंदी आलोचना की नींव सही अर्थों में इन्हीं लेखों से पड़ी।"[2] इस प्रकार, एकतरफ इन पत्र-पत्रिकाओं में समसामयिक साहित्य पर परिचयात्मक लेख, पुस्तक-समीक्षाएँ प्रकाशित हुईं, वहीं दूसरी तरफ "इन पत्रिकाओं में अक्सर प्राचीन लेखकों और साहित्य पर लेख प्रकाशित होते थे। परंतु उनका स्वर परिचयात्मक था, और उद्देश्य अपनी परंपरा का पुनरान्वेषण।"[3] इन्हीं पुस्तक समीक्षाओं, समसामयिक और प्राचीन साहित्य पर लिखे गए परिचयात्मक लेखों से साहित्यिक 'वाद-विवाद' का वातावरण बना और हिंदी आलोचना की नींव पड़ी।

हिंदी में आलोचना की नींव पड़ते ही जिन दो प्रवृत्तियों को स्पष्टतः लक्षित किया जा सकता है, उसमें से एक प्रवृत्ति हैसमकालीन रचनाशीलता से सक्रिय संवाद। दूसरी प्रवृत्ति है, अपनी परंपरा का अन्वेषण और उसका मूल्यांकन। हिंदी आलोचना का सर्वांश प्रायः इन्हीं दो आधारों पर टिका हुआ है। बहुत बाद में एक और प्रवृत्ति का बीज पड़ा वह है, किसी 'आलोचक की आलोचना का सम्यक मूल्यांकन। इस प्रवृत्ति के विकास में भी पत्र-पत्रिकाओं की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों और पुस्तक-समीक्षाओं से जिस हिंदी आलोचना की नींव पड़ी, नामवर सिंह द्वारा संपादित 'आलोचना' पत्रिका में विविध विषयों पर आयोजित परिसंवादों, संपादकीय वक्तव्यों, लेखों और शोधपरक आलेखों, साहित्यिक वाद-विवादों ने हिंदी आलोचना के भवन निर्माण में अपना बहुमूल्य योगदान दिया।

आलोचना की प्रकृति और स्वरूप को लेकर अधिकांश विद्वानों का यही मत है कि उसका

सीधा संबंध समकालीन रचनाशीलता से जुड़ा हुआ होता है। समकालीन रचनाशीलता से जुड़कर ही कोई आलोचना आलोचना बनती है। इस संदर्भ में यदि 'परंपरा के मूल्यांकन' के सवाल को देखें तो उसका भी संबंध किसी-न-किसी रूप में समकालीन रचनाशीलता से अवश्य रहता है। विश्वनाथ त्रिपाठी का मत है कि "परंपरा का मूल्यांकन भी एक प्रकार से समकालीन आलोचना का ही रूप है। इसीलिए मैं इसको बड़ा महत्त्व देता हूँ"[4] इस प्रकार समकालीन रचनाशीलता के अध्ययन के अंतर्गत ही परंपरा के मूल्यांकन के प्रश्न को जोड़कर देखा गया है। किंतु इस अध्ययन में हम दोनों को अलग-अलग रखकर देखेंगे, जिससे नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' पत्रिका के इन क्षेत्रों में दिए गए योगदान को स्पष्ट किया जा सके।

'आलोचना' पत्रिका की अपनी समकालीन रचनाशीलता को लेकर क्या दृष्टि रही है, तथा उसे किस रूप में प्रस्तुत कर सकी है उसकी सही छवि को पाठकों से परिचित कराने में उसकी क्या भूमिका रही है आदि सवालों का हल ढूँढने का प्रयास इस शोध प्रबंध के चतुर्थ अध्याय में किया जा चुका है। समकालीन रचनाशीलता को लेकर नामवर सिंह ने 'आलोचना' पत्रिका के माध्यम से कौन-सा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, उसकी सामान्य चर्चा भर का ही यहाँ स्थान है। नामवर सिंह द्वारा संपादित 'आलोचना' का अपने समकालीन समय की रचनाशीलता के बीच किस प्रकार की उपस्थिति रही है, उसे परमानंद श्रीवास्तव ने इन शब्दों में व्यक्त किया है"एक पत्रिका अपने समय के साहित्यिक परिदृश्य में कैसे हस्तक्षेप करती है, कैसे एक दौर के रचनात्मक बदलाव के लिए उपयुक्त नाम खोजने के लिए प्रयत्नशील होती है 'आलोचना' के अनेक अंक इसके उदाहरण हैं। निष्क्रिय जानकारी उपलब्ध करानेवाली पत्रिकाएँ हर दौर में मौजूद रही हैं, सक्रिय संवाद का जीवंत सिलसिला बनाए रखनेवाली पत्रिकाएँ पत्रकारिता के इतिहास में विरल हैं।"[5]

'आलोचना' पत्रिका ने समकालीन रचनाशीलता के संदर्भ में क्या योगदान दिया है, यदि इसे देखें तो उसका सबसे पहला और महत्त्वपूर्ण योगदान गजानन माधव मुक्तिबोध की इक्यावनवीं

जन्म तिथि पर आयोजित विशेषांक और उन पर कई अंकों में आलोचनात्मक लेखों को प्रकाशित किया गया है, जिसके माध्यम से मुक्तिबोध की रचना-प्रक्रिया, व्यक्तित्व और कृतित्त्व से हिंदी जगत परिचित हो सका। नामवर सिंह ने अपने संपादन में 'आलोचना' पत्रिका के माध्यम से गजानन माधव मुक्तिबोध को नई कविता के केंद्र में स्थापित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

नामवर सिंह का संपादकीय विवेक उनके आलोचनात्मक विवेक से भिन्न नहीं है, और उनका मानना है कि "आलोचक का एक मुख्य उद्देश्य यह भी है, जैसा कि इलियट ने कहा है कि हर आलोचक इतिहास की या अपनी परंपरा की पुनः व्यवस्था करता है। यों कहें कि आलोचना का एक कैनन होता है यानी कि अपकी दृष्टि में जो महत्त्वपूर्ण हैसार्थक है वह क्या है? प्रचलित कैनन पर विचार करना और ज़रूरत हो तो उस कैनन को बदल देना"[6] 'अब जब नामवर सिंह ने मुक्तिबोध पर 'आलोचना' का अंक संपादित किया उसके पीछे इसी कैनन परिवर्तन का सवाल सम्मुख था। उनका मत है कि"अज्ञेय और नई कविता की इतनी धूम थी कि मुक्तिबोध जैसा महत्त्वपूर्ण कवि उपेक्षित था... अब मैंने मुक्तिबोध पर विशेषांक निकाला। मुक्तिबोध पर किताब तो मैंने अलग से लिखी ही लेकिन विशेषांक पहले निकाला था।...इस तरह मैंने कविता में कैनन को बदलने की कोशिश की।"[7] इसी तरह, नई कविता के रोमानी भावबोध युक्त पीढ़ी ने साठोत्तरी पीढ़ी के युवा रचनाकारों-लेखकों के सामाजिक-राजनीतिक परिप्रेक्ष्य की अवहेलना करते हुए उनका अवमूल्यन किया जा रहा था, उसे दौर मे इस पीढ़ी के रचकारों-लेखकों को विद्रोह को 'ऐय्याश प्रेतों के विद्रोह' के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा था, तब नामवर सिंह ने युवा लेखन को उसके सही परिप्रेक्ष्य में देखने और समझने के लिए 'आलोचना' पत्रिका में 'युवालेखन पर एक बहस' शीर्षक से परिसंवाद आयोजित किया। यही नहीं 'आलोचना' पत्रिका के आरंभिक अंकों में युवा लेखन पर केंद्रित कई आलेख और संपादकीय वक्तव्य देखने को मिल जाते हैं। उन्होंने युवा रचनाशीलता का मूल्यांकन करते हुए इसके केंद्र में 'धूमिल' की प्रतिभा को हिंदी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया। और

'धूमिल' और राजकमल चौधरी को इस पीढ़ी की प्रमुख देन कहा। धूमिल की मृत्यु पर श्रद्धांजलि स्वरूप 'आलोचना' का अंक तैयार किया और इस साठोत्तरी कविता में 'धूमिल' को स्थापित करने का कार्य किया।

आपातकालोत्तर हिंदी कविता की रचनाशीलता के स्वरूप को समझने के लिए 'आलोचना' पत्रिका में कई लेख प्रकाशित किए गए हैं, जिससे 'समकालीन कविता', समकालीन कहानी का स्वरूप स्पष्ट हो सके। इस 'समकालीन कविता' के पारिभाषिक पदबंध को स्पष्ट करने के लिए नवांक-56-57 में 'समकालीन कविता' को समझाने के लिए काव्य-संग्रहों की समीक्षा प्रस्तुत की। 'आलोचना' में प्रकाशित लेखों के माध्यम से नागार्जुन और त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह की पीढ़ी को समकालीन कवियों के प्रेरणा-स्तंभ के रूप स्थापित करने का कार्य करते हैं। नागार्जुन और त्रिलोचन के काव्य-व्यक्तित्त्व को हिंदी कविता की लोकधर्मी परंपरा से जोड़ते हुए उन्हें 'दूसरी परंपरा की खोज' के संबंध में उनका उल्लेख करते हैं। इस प्रकार हिंदी आलोचना में नागार्जुन और त्रिलोचन की कविता का मर्म तो सभी समझते थे, किंतु उनकी सार्थकता और महत्त्व 'समकालीन कविता' के संदर्भ में क्या है? इसे 'आलोचना' पत्रिका के नागार्जुन और त्रिलोचन विशेषांक के माध्यम से जाना तो गया ही, इसके अतिरिक्त, इसके विविध अंकों में प्रकाशित लेख आदि से भी उनके महत्त्व और सार्थकता को स्पष्ट करने में 'आलोचना' पत्रिका की निर्णायक भूमिका का ऐतिहासिक महत्त्व है। 'आलोचना' पत्रिका ने हिंदी कथा आलोचना को विकसित करने का भी कार्य किया। इस संदर्भ में 'आलोचना' पत्रिका की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि विजयमोहन सिंह, गोपालराय और मधुरेश की कथालोचना है।

हिंदी-नाट्य-नाटक संबंधी अध्ययन अत्यंत शोचनीय अवस्था में रहा है. इस संदर्भ में 'आलोचना' पत्रिका का अन्यतम योगदान तब स्पष्ट होता है जब हम आलोचना के प्रत्येक दूसरे-तीसरे अंकों में नाटकों पर गंभीर शोधपूर्ण लेख, अथवा उसके अध्ययन संबंधी समस्याओं पर

लेख आदि देखते हैं। अपने समकालीन नाट्य संबंधी अध्ययन क्षेत्र में 'आलोचना' की महत्त्वपूर्ण देन 'नरनारायण राय', 'मनोहर काले', सत्येंद्रकुमार तनेजा आदि हैं। 'आलोचना' के पाठकों ने इन विद्वानों के निबंधों और लेखों से हिंदी नाटकों को समझने का प्रयास किया। हिंदी आलोचना के पाठक भी इनके लेखों में माध्यम से ही इनकी प्रतिभा से अवगत हो सके।

नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' पत्रिका परंपरा को किस रूप में देखती है? और 'परंपरा के मूल्यांकन' संबंधी सवालों पर 'आलोचना' पत्रिका की क्या दृष्टि रही है. यह देखना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है. क्योंकि हिंदी आलोचना में परंपरा के मूल्यांकन का प्रश्न सिर्फ साहित्यिक प्रश्न न रहकर कई स्तरों पर उसे सांस्कृतिक प्रश्न का रूप लेते देखा जा सकता है। नामवर सिंह के संपादन में 'आलोचना' पत्रिका ने 'परंपरा के मूल्यांकन' के प्रति जिस दृष्टि को विकसित किया है, वह न केवल हिंदी आलोचना के क्षेत्र में बल्कि किसी भी संस्कृति, परंपरा, और अतीत की जातीय चेतना के मूल्यांकन के क्षेत्र में अत्यंत ही मूल्यवान देन है। यदि ध्यान दें तो 'आलोचना' पत्रिका ने हिंदी आलोचना' में परंपरा के मूल्यांकन' के प्रश्न को गंभीर चुनौती के रूप में स्वीकार किया, इसका कारण यह था कि "एक ओर पुराणपंथी-पुनरुत्थानवादी ताक़तें परंपरा-प्रेम के नाम पर समय तथा इतिहास के अग्रगामी चरणों का निषेध करते हुए हमें पूरी तरह अतीत में लौटा ले जाने को तत्पर हैं, और दूसरी अस्तित्त्ववादी-आधुनिकतावादी कलादृष्टियाँ परंपरा तथा इतिहास को पूरी तरह अमान्य करते हुए हमें न केवल अपने गत से वरन आगत से भी काटकर एक अभिशप्त नियति लिए हुए मात्र वर्तमान में ही जीने अथच मौत के आतंक में जीने का दर्शन दे रही है. तथा साहित्य और कला-सर्जना में अपने गहरे निशान छोड़ रही है।"[8] दूसरी तरफ मार्क्सवादी आलोचकों के यहाँ परंपरा के मूल्यांकन के संबंधी अध्ययन में भी घोर असंगतियां तोड़ मरोड़ और पूज्य भाव युक्त इतिहास विरोधी दृष्टि के कारण यह ज़रूरी हो गया था कि"इन पतनशील, इतिहास-विरोधी, विज्ञान-विरोधी, मनुष्यविरोधी, जीवन-दृष्टियों तथा कला दृष्टियों का विरोध करते हुए उनसे संघर्ष

करती हुई तथा साहित्य रचना और साहित्य समीक्षा की गौरवशाली जीवंत परंपरा को विकसित और पुष्ट करने के लिए कृत संकल्प रचनाकारों-विचारकों की जागरूक नई पीढ़ी को ऐसे सवालों के प्रति मुखातिब किया जाए जो उसे प्रतिगामी-प्रतिक्रियावादी शक्तियों से कारगर तरीके से निपटने में मदद दे सकें और उसके सामने 'परंपरा की सही छवि' को बराबर आलोकित किया जाए।''[9]

'आलोचना' पत्रिका ने 'परंपरा के मूल्यांकन' के संदर्भ में न केवल अपनी मूल्यवान सांस्कृतिक विरासत की सही छवि को बराबर आलोकित करती रही है. बल्कि अपनी सांस्कृतिक विरासत की प्रतिगामी-प्रतिक्रियावादी ताक़तों के संगठित अभियान से रक्षा की है तथा उसने गौरवशाली जीवंत परंपरा को विकसित और पुष्ट करने के लिए कृत संकल्प रचनाकारों-विचारकों की जागरुक नई पीढ़ी को तैयार भी किया है। 'आलोचना' पत्रिका ने परंपरा के मूल्यांकन के संबंध में 'आलोचनात्मक रुख' का परिचय दिया है। नामवर सिंह की दृष्टि यह रही है हमें परंपरा के समस्त पक्षों ''समस्त असंगतियों, अंतर्विरोधों के साथ इसलिए उनकी जो अतीतता है, उनके अंदर विरोध है, उनकी असंगतियाँ, इनका सही-सही वास्तविक ज्ञान हम प्राप्त करें। यानी हम तात्कालिक उपयोग के लिए उनका इस्तेमाल नहीं चाहते हैं, बल्कि उनके अपने सही ऐतिहासिक संदर्भ और उनके समस्त अंतर्विरोधों के साथ उपस्थित करके देखें।''[10] इस प्रकार अपनी परंपरा और उसके मूल्यांकन के संदर्भ में एक ऐसी दृष्टि से संघर्ष करना था जो उसके प्रति श्रद्धाविगलित पूज्य-दृष्टि का भाव बनाए रखते हुए वर्तमान समस्या का हल अतीत में ढूँढ़ने का प्रयत्न कर रही थी जो परंपरा के मूल्यों को वर्तमान जीवन पर लागू करती थी। परंपरा के गौरव गान में उनकी असंगतियों की अनदेखी तथा उन्हें विस्मृत करते हुए आत्मविस्मृति में खो रहे थे। इसलिए 'आलोचना' पत्रिका में प्रकाशित लेखों और संपादकीय टिप्पणियों से एक ऐसी दृष्टि के विकास का प्रयत्न देखा जा सकता है. जो उपर्युक्त दृष्टि का प्रतिकार करती है। जो अपने अतीत अथवा अपनी सांस्कृतिक विरासत को उसके ऐतिहासिक संदर्भों में, युगीन सीमाओं में रखते हुए उसके अंतर्विरोधों के बीच रखकर

उसका मूल्यांकन करती है जिसमें अतीत की अतीतता को सुरक्षित रखते हुए उसकी 'विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता' के लिए संघर्षपूर्ण रवैये को देखा जा सकता है, जिससे 'परंपरा की सही छवि' प्रस्तुत की जाए। इस परिप्रेक्ष्य में 'आलोचना' पत्रिका ने भारतेंदु हरिश्चंद्र, मैथिलीशरण गुप्त, हिंदी नवजागरण और उस के अग्रदूतों का जो मूल्यांकन प्रस्तुत किया हे उसमें इसी दृष्टि का परिचय मिलता है। इस संदर्भ में यहाँ उल्लेखनीय है। 'आलोचना' पत्रिका के लेखों के माध्यम से हिंदी आलोचना में जिस महत्त्वपूर्ण बहस की नींव पड़ी वह हैहिंदी नवजागरण की संकल्पना। डॉ0 रामविलास शर्मा की यह मौलिक संकल्पना पहले पहल 'आलोचना' पत्रिका के पृष्ठों पर ही अवतरित हुई। उनका लेख 'महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' सर्वप्रथम 'आलोचना' पत्रिका में ही प्रकाशित हुआ। बाद में यह पुस्तक रूप में आई।

हिंदी नवजागरण की संकल्पना के अन्यान्य परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट करने का काम 'आलोचना' पत्रिका में प्रकाशित लेखों संपादकीय टिप्पणियों के माध्यम से हुआ है। 'आलोचना' पत्रिका ने हिंदी नवजागरण की संकल्पना पर जमकर बहस चलाई है। 'आलोचना' का संपादन करते हुए नामवर सिंह अपने संपादकीय के माध्यम से इस का मूल्यांकन करते हुए इसके अन्यान्य पक्षों का उद्घाटन करते हैं। 'आलोचना' पत्रिका ने अपनी परंपरा के मूल्यांकन के प्रति जिस आलोचनात्मक विवेक का परिचय दिया है, वह हिंदी नवजागरण और उसके अग्रदूतों का समग्रता में अध्ययन का मार्गप्रशस्त करता है। इसलिए कहा जा सकता है, 'आलोचना' हिंदी की आलोचनात्मक विवेक की पत्रिका है। 'आलोचना' पत्रिका ने जिस आलोचनात्मक विवेक को हिंदी पाठकों में जाग्रत करने का प्रयास किया है, उससे हिंदी आलोचना में जनतांत्रिक और प्रगतिशील चिंतन युक्त एक स्वस्थ वातावरण निर्माण का कार्य किया है। परंपरा का कोई भी मूल्यांकन या तो इस आदर्श को अपनाएगा अथवा इस दृष्टि से टकराए बिना आगे नहीं बढ़ सकेगा।

इसके अतिरिक्त, 'आलोचना' पत्रिका की परंपरा के मूल्यांकन के संदर्भ में एक और

महत्त्वपूर्ण उपलब्धि प्रभुत्त्वशाली परंपरा के साथ-साथ दूसरी परंपराओं की महत्ता की स्थापना है। 'आलोचना' पत्रिका उन अन्य दूसरी परंपराओं की खोज का माध्यम बनती है, जिनका स्वर किसी प्रधान-परंपरा में उभर कर नहीं आ सका है। नामवर सिंह की यह मूल संकल्पना भी पहले पहल 'आलोचना' पत्रिका में स्थान पाती है जो आगे चलकर 'दूसरी परंपरा की खोज नामक पुस्तक मे अपना विस्तार पाती है। 'आलोचना' पत्रिका की हिंदी आलोचना को यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण देन है, जिसमें साहित्य और संस्कृति की परंपरा में उन दबा दिए गए, हाशिए पर डाल दी गईं परंपराओं-धाराओं को पुनर्जीवन मिला उनके अध्ययन के लिए नवीन दृष्टियों एवं चिंतन पद्धति को खोजने का प्रयास किया गया है। इसका संबंध-सूत्र नामवर सिंह की दृष्टि में संस्कृत की लोकधर्मी कविताओं से चलकर नागार्जुन, त्रिलोचन और बोधिसत्व तक आती है। यही नहीं नामवर सिंह के यहाँ इसका अर्थ उन सांस्कृतिक परंपराओं से भी है. जो आज अलग-अलग स्वर में अपना रूप लेते हुए दिखाई पड़ती हैं जिनका संबंध विभिन्न अस्मितावाले विमर्शों तक में देखा जा सकता है। 'दूसरी परंपरा की खोज' का संबंध आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की साहित्य-इतिहास दृष्टि और परंपरा के अध्ययन की अन्यतम दृष्टि से जुड़कर स्पष्ट होता है। इस संबंध में 'आचार्य हजारीप्रसाद स्मृति-अंक' (नवांक-49-50) त्रिलोचन विशेषांक, (नवांक-82) और 'कविता की दूसरी परंपरा' संबंधी संपादकीय (नवांक-83) इसकी अवधारणात्मक पक्ष को स्पष्ट करते हैं। दूसरी परंपरा की खोज ने हिंदी आलोचना को जो अवधारणा दी है. उसका आधार प्रभुत्त्वशाली परंपरा के साथ अन्यान्य धाराओं को समान महत्त्व देने की प्रवृत्ति है, जिससे किसी भी चिंतन की वर्चस्वशाली परंपरा को चुनौती देनेवाली स्थितियों को उसकी नगण्यता में भी महत्त्व दिया जा सके। हिंदी आलोचना किसी भी अवांतर चिंतन पद्धति को दरकिनार करने का कार्य अब नहीं कर सकेगी।

हिंदी आलोचना में नवीन युग परिवर्तन तब लक्षित किया जा सकता है जब इससे मार्क्सवादी कला-साहित्य संबंधी चिंतन का जुड़ाव होता है। बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक से हिंदी

आलोचना में इस साहित्य-चिंतन का प्रवेश हुआ, जिसने हिंदी आलोचना को वैज्ञानिक आलोचना बनाने और नवीन आलोचनात्मक दृष्टि को प्रस्तुत करने में अपना महत्तम योगदान दिया। आज जिसे हिंदी आलोचना कहते हैं, उसका प्रतिनिधित्त्व मार्क्सवादी साहित्य-कला चिंतन युक्त विद्वान-आलोचक ही कर रहे हैं। हिंदी आलोचना का अधिकांश मार्क्सवादी साहित्य और कला-चिंतन पर आधारित है और बहुलांश उससे प्रेरित है। इस मार्क्सवादी आलोचना के विकसित करने में नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' पत्रिका का उल्लेखनीय और अविस्मरणीय योगदान है। इस संदर्भ में यहाँ उल्लेखनीय है कि नामवर सिंह स्वयं घोषित रूप में मार्क्सवादी आलोचक हैं और उनके द्वारा संपादित 'आलोचना' पत्रिका का वैचारिक आधार मार्क्सवादी चिंतन एवं विचारधारा से प्रतिबद्धता है।

जब चौथे दशक में हिंदी आलोचना में मार्क्सवादी साहित्य-चिंतन पर आधारित आलोचनात्मक प्रवृत्ति की नींव पड़ी उस समय मार्सवादी चिंतकों का काम मार्क्सवादी सिद्धांतों को कला और साहित्य पर लागू करते हुए मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र को विकसित करना था। साहित्य और कला को सामाजिक-परिवर्तन के माध्यम के रूप में देखा गया। समाजवाद की स्थापना में साहित्य और कला को राजनीतिक हथियार के रूप में देखा गया है। उसके अतिरिक्त उस दौर में साहित्य और समाज के संबंध की व्याख्या, तथा शोषणकारी-उत्पीड़न कारी शक्तियों को पहचानने का काम भी किया गया। किंतु इस चिंतन की अवधारणाओं जैसे 'वर्ग-संघर्ष' और 'आधार-अधिरचना' को साहित्य और कला पर 'ज्यों का त्यौं' फिट करने की कोशिश शुरू हुई। साहित्य और समाज में दर्पणवादी संबंध स्थापित किया जाने लगा। पार्टी की घोषणाओं पर रचनाओं का मूल्यांकन करते हुए, प्राचीन साहित्य को सामंती मानसिकता से ग्रस्त बताया गया, तो आधार और अधिरचना के बीच स्थिर व यांत्रिक संबंध के रूप में देखा गया, तथा व्यावहारिक समीक्षा में मार्क्सवादी अवधारणाओं को ही लागू किया गया, मार्क्सवादी पद्धति का ज़्यादा उपयोग नहीं किया गया। इन सबके कारण

मार्क्सवादी आलोचना ने साहित्य की समस्याओं से जुड़ी अन्य कलावादी चिंतन पद्धति, नई समीक्षा पद्धति, साहित्य की भाषावादी चिंतन से उपजे सवालों का जवाब नहीं ढूँढ पा रही थी। गैर-मार्क्सवादी चिंतन और मार्क्सवादी चिंतन के बीच सैद्धांतिक और व्यावहारिक आलोचना में कई स्तरों पर 'व्यावहारिक लाचारी' का सामना करना पड़ा। परिणाम यह हुआ कि पश्चिम के मार्क्सवादी चिंतन एफ. आर. लीविस और 'स्क्रूटिनी' पत्रिका की नई समीक्षा पद्धतियों के सम्मुख परास्त हुई तो, हिंदी की मार्क्सवादी आलोचना की पत्रिका 'आलोचना' शिवदान सिंह चौहान के हाथों से निकल धर्मवीर भारती और उनके संपादन समूह के हाथ में चली आई, कलावादी-आधुनिकतावादी चिंतन के लिए जिनकी ख्याति थी। इस प्रकार चौथे दशक की मार्क्सवादी आलोचना को छठे दशक की रूपवादी, भाषावादी, कलावादी नई मोर्चे पर पराजय का सामना करना पड़ा। यह वह समय था जहाँ मार्क्सवादी चिंतन को स्तालिनोत्तर मार्क्सवादी चिंतन से जोड़ना था, जिसमें मार्क्सवादी साहित्य चिंतन को यांत्रिक पद्धतियों से मुक्त कर उसके सर्जनात्मक विकास का मार्ग प्रशस्त हो सके, जिससे तद्युगीन अस्तित्त्ववादी, नई समीक्षा पद्धतियों की कलावादी चिंतन को पटकनी दी जा सके। जिसके फलस्वरूप पश्चिमी साहित्य और कला-चिंतन में मार्क्सवादी आलोचना की नवीन बहसों का सूत्रपात हुआ, जिसमें जार्ज लूकाच, अतोनियों ग्राशी, ब्रेख्त, हरबर्ट मार्कूस, वाल्टर बेंजामिन, रेमंड विलियम्स जैसे विद्वान-चिंतकों ने नवीन आयाम जोड़ें जिनके माध्यम से मार्क्सवादी आलोचना ने अपने युग के प्रश्नों का उत्तर देने का कार्य कियाजिसमें 'न्यू लेफ्ट रिव्यू' पत्रिका महत्त्वपूर्ण माध्यम बनी। वहीं हिंदी की मार्क्सवादी आलोचना जो शीतयुद्धकालीन दौर से गुजर रही, जिसके पास भी आधुनिकतावादी, कलावादी चिंतन से निपटने के लिए वही पुरानी यांत्रिक मार्क्सवादी अवधारणाएँ ही थीं, यहाँ हिंदी में मार्क्सवादी आलोचना को पुनर्जीवन की, नवीनीकरण की तीव्र आवश्यकता थी। इस आवश्यकता की पूर्ति का काम नामवर सिंह ने अपने आलोचनात्मक लेखों-संपादकीयों के माध्यम से किया। इस कार्य में

'आलोचना' पत्रिका माध्यम बनी।

हिंदी की मार्क्सवादी आलोचना की नवीन बहसों को सबसे पहले नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' पत्रिका में एक निश्चित उद्देश्य को व्यवस्थित ढंग से स्थान मिलना शुरू हुआ। यह नामवर सिंह का संपादकीय विवेक ही था जिसने मार्क्सवादी आलोचना की नवीन व्याख्याओं और संदर्भों से हिंदी-आलोचना संसार को समृद्ध किया। 'आलोचना' पत्रिका में अंकों में मार्क्सवादी आलोचना की दूसरी परंपरा के चिंतकों के लेख, व्याख्यान और शोधपूर्ण पत्रों को हिंदी में अनूदित करवाकर प्रकाशित किया। मार्क्सवादी आलोचना की नई बहसों के सूत्रधार जार्ज लूकाच पर 'आलोचना' पत्रिका का एक अंक आयोजित किया। ग्राम्शी से हिंदी जगत को परिचित कराने का श्रेय नामवर सिंह को प्राप्त है। इसके लिए 'आलोचना' पत्रिका एक महत्त्वपूर्ण माध्यम बनी। 'आलोचना' पत्रिका में वाल्टर बेंजामिन और रेमंड विलियम्स के कई लेखों का अनुवाद प्रकाशित करते हुए हिंदी की मार्क्सवादी आलोचना को कलावादी साहित्य-चिंतन के विरुद्ध खड़ा करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। 'आलोचना' पत्रिका को मार्क्सवादी चिंतन की नवीन धारा की पत्रिका के रूप में विकसित किया। यह अनुमान का विषय नहीं, बल्कि तथ्य है कि यदि नामवर सिंह अपने आलोचनात्मक विवेक का परिचय देते हुए हिंदी आलोचना को मार्क्सवादी आलोचना की नवीन पद्धतियों, नई मान्यताओं से नही जोड़ते तो हिंदी की मार्क्सवादी आलोचना के पास यांत्रिक और स्तालिनकाल की मार्क्सवादी चिंतन पद्धति ही हमारे पास रहती है। शिवदान सिंह चौहान बनाम रामविलास शर्मा का द्वंद्व हमारे सम्मुख रहता परंतु मार्क्सवादी आलोचना वहाँ नहीं ही रहती। 'आलोचना' पत्रिका के माध्यम से नवमार्क्सवादी आलोचना को प्रस्तुत करते हुए नामवर सिंह, पश्चिमी कलावादी चिंतन और आधुनिकतावादी चिंतन से बार-बार टकराते हुए देखे जा सकते हैं। नामवर सिंह को इस बात की पूरी जानकारी थी, हिंदी में 'कलावाद' अपना पैर जमा रहा था, जिसकी परिणति, पूर्वग्रह' पत्रिका के प्रकाशन के रूप में देखी जा सकती है। नामवर सिंह स्वयं एक

साक्षात्कार में स्पष्ट करते हैं कि'' 'पूर्वग्रह' पत्रिका असल में 'आलोचना' के विरोध में निकली थी सन् 72-73 में और यह बात मुझे मालूम थी। 'आलोचना' में मार्क्सवादी दृष्टि थी तो इसके विरोध में 'पूर्वग्रह' को एक कलावादी या रूपवादी दृष्टि से निकाला गया।''[11] इसलिए 'पूर्वग्रह' पत्रिका की कलावादी दृष्टि के विरुद्ध 'आलोचना' पत्रिका ने साहित्य की मार्क्सवादी दृष्टि का निरंतर विकास किया। 'आलोचना' इस कलावादी-रूपवादी रुझान के विरुद्ध एक व्यापक आधार निर्मित करने में सफल रही। 'आलोचना' ने मार्क्सवादी चिंतन की नवीन पद्धतियों के माध्यम से हिंदी में कलावादी-रूपवादी चिंतन को रोकने का कार्य किया। आज हिंदी में मार्क्सवादी आलोचना जिस रूप में भी अपने उन्नयन को पहुँची है, उसको यहाँ तक लाने में 'आलोचना' पत्रिका का अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण योगदान है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'आलोचना' पत्रिका घोषित रूप से मार्क्सवादी साहित्य-चिंतन को प्रश्रय देनेवाली पत्रिका रही है, इसने साहित्य की कलावादी चिंतन धारा के विरुद्ध अपना एक मार्क्सवादी आधार विकसित किया, जिसके माध्यम से हिंदी में मार्क्सवादी साहित्य-चिंतन को अत्यंत ही विस्तार मिला। शक्ति मिली। और ऊर्जा भी। ध्यातव्य है, कि 'आलोचना' पत्रिका सिर्फ कलावादी-रूपवादी चिंतन का ही विरोध नहीं करती है, बल्कि यांत्रिक व रूढ़ मार्क्सवादी चिंतन और उग्रवामपंथ के साथ-साथ स्थूल समाजशास्त्रीय चिंतन की भी विरोधी रही है, इसका उदाहरण 'आलोचना' के लेनिन विशेषांक, और जार्ज लूकाच और लूसिएँ गोल्डमान अंक में देखा जा सकता है। इससे यह स्पष्ट है कि 'आलोचना' पत्रिका ने मार्क्सवादी आलोचना की पक्षधरता करते हुए उसके सर्जनात्मक विकास को महत्त्व देती है। हिंदी की मार्क्सवादी आलोचना को पुनर्जीवन तथा उसे नवीन रूप देने में रूपवादी-कलावादी चिंतन के विरुद्ध संघर्ष में 'आलोचना' पत्रिका की निर्णायक भूमिका है। यही नहीं मार्क्सवादी आलोचना को आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और डॉ0 रामविलास शर्मा से जोड़कर उसे हिंदी की आलोचना परंपरा से उसका

संबंध स्थापित किया। और उनपर विशेषांक निकाले। उनकी प्रगतिशील चिंतन-धारा का उद्घाटन करते हुए इन आलोचकों को मार्क्सवादी आलोचना की पूर्व पीठिका से जोड़ने का काम किया। और यह स्पष्टतः यह बोध कराया कि हिंदी आलोचना की मार्क्सवादी परंपरा इन्हीं महानुभावों के पदचिह्नों पर चलकर ही अपना विकास कर सकती है। यह हिंदी आलोचना के विकास में 'आलोचना' पत्रिका की अन्यतम देन है। इस प्रकार नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' पत्रिका के माध्यम से हिंदी आलोचना मार्क्सवादी आलोचना की नवीन बहसों से समृद्ध हुई।

इसके अतिरिक्त, 'आलोचना' पत्रिका ने साहित्य अध्ययन की अन्य प्रवृत्तियों से भी हिंदी आलोचना और हिंदी पाठकों से परिचित कराया। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है, 'शैलीविज्ञान' जैसी साहित्यिक अध्ययन की नवीन प्रवृत्ति। "उस समय 'शैली विज्ञान' की नई चीज़ चली थी जिसके अंतर्गत किसी साहित्यिक कृति का अध्ययन हम उसकी भाषा का विश्लेषण करते हुए करते हैं। इस विषय पर हमने रवींद्रनाथ श्रीवास्तव के कई लेख 'आलोचना' में छापे। बाद में 'शैली विज्ञान' पर उनकी पुस्तक भी आई। बाद में और भी लोगों ने लिखा लेकिन शुरूआत करने का श्रेय 'आलोचना' को ही जाता है।"[12] इस विषय पर 'आलोचना' में कृपाशंकर सिंह, विद्यानिवास मिश्र और बच्चन सिंह के लेख आदि भी उल्लेखनीय है, जिसने शैली वैज्ञानिक अध्ययन की एक शाखा को ही विकसित करने का काम किया।

नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' पत्रिका का साहित्य-अध्ययन के क्षेत्र में नवीन और अन्यतम अवदान 'साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन की प्रस्तावना' प्रस्तुत करने में दिखाई पड़ता है। इस संदर्भ में नामवर सिंह का मत है कि " 'आलोचना' में जिस दूसरी प्रवृत्ति का प्रारंभ मैने किया, वह प्रवृत्ति है 'साहित्य के समाजशास्त्र' की। यों तो साहित्य और समाज के रिश्ते पर बहुत पहले से विचार होता आ रहा था, लेकिन बगैर यह जाने कि इसका एक शास्त्र भी होता है। साहित्यशास्त्र है तो समाजशास्त्र भी है। समाजशास्त्र के लोग इस रिश्ते को कैसे देखते हैं? इसकी

पद्धतियाँ क्या हैं? कैसे विकसित हुई हैं? इन सब प्रश्नों को 'आलोचना' के मंच से सामने लाने का प्रयत्न किया।''[13] इस तथ्य की पुष्टि मैनेजर पांडेय की पुस्तक 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका' के समर्पण पृष्ठ से होती है, जिसमें नामवर सिंह को समर्पित करते हुए यह वक्तव्य प्रकाशित है कि''डॉ0 नामवर सिंह को सादर जिनके प्रयत्न से 'साहित्य का समाजशास्त्र' हिंदी में आया है।''[14] साहित्य के समाजशास्त्र को हिंदी में लाने में 'आलोचना' पत्रिका की क्या भूमिका रही है, उसे इन शब्दों में व्यक्त करते हैं''साहित्य के समाजशास्त्र को हिंदी में ले आने, उसकी विभिन्न दृष्टियों और आलोचनात्मक उपलब्धियों से हिंदी के पाठकों को परिचित कराने और उस पर बहस चलाने का काम 'आलोचना' पत्रिका के माध्यम से डॉ0 नामवर सिंह ने किया है।''[15]

इसी तरह साहित्य की सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन की दशा और दिशा क्या हो सकती है, इस प्रवृत्ति को स्पष्ट करनेवाले कई लेख नामवर सिंह ने 'आलोचना' पत्रिका में प्रकाशित किए हैं। इस प्रकार हिंदी आलोचना में सौंदर्यशास्त्र संबंधी अध्ययन की विविध प्रवृत्तियों को स्पष्ट करने में 'आलोचना' की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

'आलोचना' पत्रिका की साहित्यिक पत्रिकारिता के संदर्भ में अन्यतम देन आलोचनात्मक लेखों, शोधपूर्ण आलेखों का धारावाहिक रूप से प्रकाशन में माना जाना चाहिए। यहाँ ध्यान देन की बात है, कि प्रायः पत्र-पत्रिकाएँ कहाँनियों, उपन्यासों को ही धारावाहिक रूप में प्रकाशित किया करती थीं, किंतु कदाचित यह साहित्यिक पत्रकारिता के इतिहास में पहली बार हुआ कि 'जिसमें आलोचनात्मक लेखों को क्रम से, धारावाहिक रूप में प्रकाशित किया गया हो। 'आलोचना' पत्रिका में आलोचनात्मक लेखों का धारावाहिक प्रकाशन पहले होता है, जो बाद में पुस्तक रूप में प्रकाशित हुईं, यह क्रम सिर्फ एक-दो पुस्तक तक सीमित न रहकर, कई पुस्तकों को 'आलोचना' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित होते हुए देखा जा सकता है जो पहले-पहल लेख के रूप में ही 'आलोचना' में प्रकाशित हुईं।। यहाँ उन पुस्तकों और उसके लेखकों के नाम ही गिनाए जा सकते

हैंनंदकिशोर नवल की पुस्तक'हिंदी आलोचना का विकास', मैनेजर पांडेयकृत 'साहित्य और इतिहास दृष्टि', पूरनचंद्र जोशी 'परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम', इंद्रनाथ मदान 'आधुनिकता और हिंदी साहित्य', डॉ0 रामविलास शर्मा'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण', 'घर की बात' आदि पुस्तकें पहले-पहल आलोचनात्मक लेखों के रूप में ही 'आलोचना' में प्रकाशित हुई थीं। स्पष्ट है कि 'आलोचनात्मक लेखों' को श्रंखलावत तरीके से 'आलोचना' में प्रकाशित करना स्वयं हिंदी साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में अन्यतम योगदान के रूप ग्रहण किया जाना चाहिए। यह नामवर सिंह की संपादकीय विवेक की महत्ता को ही उद्घाटित करता है।

आरंभिक अध्यायों में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि हिंदी में आलोचना का सूत्रपात 'पहले-पहल' पुस्तक समीक्षा के रूप में ही हुआ है, जिनका संबंध पुस्तकों के गुण-दोष-विवेचन अथवा 'पुस्तक-परिचय' की सीमा तक रहना होता था, जब कि 'आलोचना' पत्रिका के पुस्तक-समीक्षाओं को प्रकाशित करते हुए उसके स्वरूप और धारणा में ही बदलाव लाने का कार्य किया। 'आलोचना' पत्रिका ने पुस्तक-समीक्षाओं को वैचारिक बहसों को केंद्र में रखने का काम किया। यह बहस किसी पुस्तक की समीक्षा पर स्वयं पुस्तक लेखक और समीक्षक के बीच साहित्यिक बहस की विषय-वस्तु बनती है, या उन समीक्षाओं पर कोई समीक्षक या पाठक अपनी पाठकीय प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए देखा जा सकता है। इसलिए 'आलोचना' पत्रिका ने 'पुस्तक समीक्षा' के स्वरूप को ही वैचारिक बहस के रूप में बदलने की कोशिश की, इसके लिए नामवर सिंह ने अपने संपादकीय विवेक का परिचय देते हुए 'आलोचना' में दो पद्धतियों का प्रयोग करते हैं। एक पद्धति तो यह अपनाई गई है कि किसी एक साहित्यिक कृति पर दो-दो अथवा तीन-तीन समीक्षकों की समीक्षाएँ एक साथ प्रकाशित की गयी हैं, वहीं दूसरी पद्धति पहली पद्धति से बिल्कुल ही उलट है यानी एक समीक्षक द्वारा चार-चार पुस्तकों की समीक्षाएँ एक ही अंक में प्रकाशित की गई हैं। इस प्रकार 'आलोचना' ने पुस्तक-समीक्षाओं को तो 'पुस्तक-परिचय' के रूढ़ अर्थ से मुक्त करने का अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य

किया। पुस्तक-समीक्षाओं को 'पुस्तक-परिचय' से मुक्त कर वैचारिक संघर्ष की चेतना के निर्माण की आधारशिला के रूप में प्रस्तुत करने का कार्य किया।

किसी आलोचक के लिए आलोचना-कर्म में प्रवृत्त होने के लिए कितनी तैयारी की ज़रूरत होती है विस्तृत ज्ञान और अध्ययन चाहिए, इस संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण बात कही है"उच्चकोटि की आधुनिक शैली की समालोचना के लिए विस्तृत अध्ययन, सूक्ष्म अन्वीक्षण बुद्धि और मर्मग्रहणी प्रज्ञा अपेक्षित है।"[16] इसी तरह आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी भी 'आलोचना' के लिए गंभीर तैयारी की आवश्यकता अनुभव करते हैं। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के संदर्भ में डॉ0 रामविलास शर्मा एक महत्त्वपूर्ण तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि"द्विवेदी जी सीमित अर्थ में साहित्यकार नहीं है। उनका उद्देश्य हिंदी प्रदेश में नवीन सामाजिक चेतना का प्रसार करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह समाज-विज्ञान, प्रकृति-विज्ञान, दर्शनशास्त्र और साहित्य, इन सभी के विकास के लिए प्रयत्न करते हैं।"[17] यह प्रयत्न जहाँ स्वयं द्विवेदी जी के ज्ञान वैविध्य को स्थापित करता है वहीं डॉ0 रामविलास शर्मा की दृष्टि भी इस विस्तृत ज्ञानानुशासन पर इसलिए गई कि स्वयं उनके ज्ञान का विस्तार विविध अनुशासनों तक जाता है। डॉ0 शर्मा के विस्तृत ज्ञान क्षेत्र के संबंध में प्रदीप सक्सेना का मत है कि"रामविलास शर्मा का रेंज, कार्यों के क्षेत्र और ज्ञान की विविधता का रेंज इतना बड़ा है कि उसका परिचय हमारी और अनुगत पीढ़ी को मिलना ही चाहिए। ज्ञान के तमाम अनुशासनों में उन्होंने गति की है। उनकी प्रतिभा का विस्फोट अत्यंत व्यापक है।"[18] स्पष्ट है कि सभी बड़े आलोचकों ने आलोचना के क्षेत्र में विस्तृत ज्ञान और सूक्ष्म अन्वेषण बुद्धि की तीव्र आवश्यकता महसूस की है, यह स्थिति सिर्फ आलोचकों के लिए ही नहीं आलोचना के पाठकों के लिए भी अपेक्षित है। इसीलिए किसी समय आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने क्षोभ प्रकट करते हुए ये विचार व्यक्त किया था कि"हमारे साहित्य की सबसे बड़ी कमज़ोरी यह है कि इसमें उन नवीन

ज्ञान-विज्ञान की शाखाओं पर पर्याप्त पुस्तकें नहीं हैं जिनके अध्ययन-मनन के बाद ही आधुनिक सांस्कृतिक दृष्टि उत्पन्न होती है... साहित्य की ऊँचाई के लिए जिस विशाल चौकी की आवश्यकता होती है, वह हमारे पास नहीं है।"[19] यदि ध्यान दिया जाए तो नामवर सिंह अपने संपादन के माध्यम से 'आलोचना' पत्रिका में आलोचना में प्रवृत होने लायक विपुल सामग्री को प्रकाशित करते हैं, जिससे वास्तव में 'आधुनिक सांस्कृतिक दृष्टि उत्पन्न होती है।' 'आलोचना' पत्रिका में साहित्य की विविध अध्ययन पद्धतियों से जुड़ी हुई उच्च कोटि की अध्ययन सामग्री प्रकाशित हैं। यह सामग्री हिंदी आलोचना के क्षेत्र के उन आलोचकों के द्वारा प्रस्तुत की गई है, जिससे समकालीन हिंदी आलोचना का बहुलांश निर्मित हुआ है। 'आलोचना' में शोधपूर्ण आलेख, अनूदित निबंध, पुस्तक समीक्षाएँ, संपादकीय वक्तव्यों के माध्यम से गंभीर, गूढ़ और गहन मेधा युक्त सामग्री प्रकाशित है, यह सिर्फ यही नहीं लक्षित करता है, बल्कि यह स्वयं ही हिंदी आलोचकों के विस्तृत ज्ञान भंडार और विविध ज्ञानानुशासन के क्षेत्र में गहरे पैठ की स्थिति से अवगत कराता है। नामवर सिंह द्वारा संपादित 'आलोचना' पत्रिका में उच्चकोटि की सामग्री का ही प्रकाशन होता रहा है, जिससे हिंदी आलोचना के लिए विस्तृत ज्ञानानुशासन युक्त बौद्धिक वातावरण का निर्माण हो सके, जिससे 'आलोचना' पत्रिका और उसमें प्रकाशित लेखों और शोधपूर्ण निबंधों आदि के संबंध में विजेंद्रनारायण सिंह का कथन है कि "यह तो मानना होगा कि 'आलोचना' को उन्होंने अपने संपादकत्व में प्रथम श्रेणी की पत्रिका बनाया। न केवल हिंदी के उच्चकोटि के आलोचनात्मक निबंध उन्होंने प्रकाशित किए। वरन् विदेश में मार्क्सवादी उपागम से लिखे गए आलोचनात्मक निबंधों के भी प्रामाणिक अनुवाद उन्होंने प्रकाशित लिए।... 'आलोचना' में प्रकाशित होना गौरव की बात समझा जाता था।"[20] इस प्रकार 'आलोचना' पत्रिका के माध्यम से नामवर सिंह ने ऐसी विविध ज्ञानानुशासन युक्त सामग्री प्रस्तुत कर हिंदी आलोचकों के समक्ष उसी प्रकार के ज्ञानानुशासन युक्त अध्ययन और आलोचना' में प्रवृत्त होने का आदर्श रखा। यह सामग्री राजनीति से, समाजशास्त्र से, इतिहास से,

आर्थिक अध्ययनों से प्राप्त की गई हैं, वहीं विदेशी भाषाओं के लेखादि के अनुवाद द्वारा हिंदी आलोचकों की विविध ज्ञानानुशासनों में रुचि वृद्धि के लिए प्रयत्न किया गया है। विविध ज्ञानानुशासनों से जुड़ी हुई किंतु साहित्य अध्ययन में उपयोगी सामग्री के प्रकाशन के कारण, 'आलोचना' ने जिस चीज़ से पाठकों को अवगत करा दिया, वह यह है कि 'आलोचना' बैठे ठाले का धंधा नहीं है, वह एक सांस्कृतिक प्रक्रिया का गूढ़ात्मक विविध ज्ञानानुशासन से युक्त अध्ययन और चिंतन की उपरेल दर्जे की चीज़ है, जिसमें हर किसी का प्रवेश सरलता से नहीं हो सकता है। स्पष्ट है कि नामवर सिंह के नजदीक ''प्राध्यापकीय या शास्त्रीय आलोचना सच्ची आलोचना नहीं है। श्रेष्ठ आलोचना की चिंता साहित्य से अधिक संस्कृति की होती है। और उसके सामाजिक सरोकार होते हैं।''[21] इसका कारण स्पष्ट करते हुए बताते हैं कि''मैं मानता हूँ कि 'आलोचना' विशुद्ध साहित्यिक नहीं है, अधिक व्यापक है। मुक्तबोध इसी को 'सभ्यता समीक्षा' कहते थे।''[22] इस प्रकार आलोचना पत्रिका द्वारा हिंदी में आलोचना के स्वरूप में ही बदलाव प्रस्तुत करने का कार्य किया। अब आलोचना को सतही ढंग से कामचलाऊ, वक्तव्यों, टिप्पणियों में कहकर चलता नहीं कर दिया जा सकता है, बल्कि यदि आप आलोचना में रुचि रखते हैं तो आपको इतिहास-बोधयुक्त, सांस्कृतिक चेतना-संपन्न, वैज्ञानिक दृष्टि, साहित्य की परंपराओं का ज्ञान, कला, संगीत आदि क्षेत्र का ज्ञान, राजनीतिक सामाजिक एवं आर्थिक संबंधों के विस्तृत ज्ञान के साथ साहित्य में डूबनेवाला हृदय और उसी के साथ तीक्ष्ण अन्वीक्षण बुद्धि भी होनी चाहिए जिससे किसी साहित्यिक और उसकी कृति का मर्म, उद्‌घाटित किया जा सके। स्पष्ट है कि अब आलोचना के लिए 'आलोचना' पत्रिका ने ये मानदंड किसी सैद्धांतिक या लिखित मैग्नाकार्टा के रूप में प्रस्तुत नहीं किया है, बल्कि 'आलोचना' में प्रकाशित लेख; निबंध, शोधपूर्ण आलेख आदि स्वयं इसके लिए आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

'आलोचना' पत्रिका के माध्यम से हिंदी आलोचना में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान और

जुड़ा है। वह है हिंदी की अपनी 'आलोचना की भाषा' का विकास। नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' पत्रिका ने हिंदी आलोचना में प्रगतिशील आलोचना के विकास के लिए जो लड़ाई लड़ी है उसमें हिंदी की अपनी आलोचना की भाषा के निर्माण की बेचैनी प्रत्येक जगह अनुभूत की जा सकती है। कहना न होगा कि हिंदी आलोचना के सम्मुख 'आलोचना' पत्रिका में प्रयुक्त भाषा ही हिंदी आलोचना की सही व जातीय भाषा हो सकती है, जिसके निर्माण में नामवर सिंह ने अपने संपादन के आरंभिक दिनों से ही प्रयासरत रहे हैं।

नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' पत्रिका ने हिंदी आलोचना में से जिन आलोचकों को चुनकर अपना कैनन निर्मित किया, और हिंदी आलोचना के सम्मुख श्रेष्ठ आलोचकों की एक आदर्श सूची प्रस्तुत की जिसमें आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और डॉ0 रामविलास शर्मा हैं। नामवर सिंह ने अपने संपादकीय विवेक का प्रयोग करते हुए तीनों आलोचकों पर अलग-अलग विशेषांक आयोजित किए। और स्पष्ट किया कि ये महानुभाव ही हिंदी आलोचना के आधार स्तंभ हैं। हिंदी की आगामी आलोचना का भविष्य इन्हीं आधार-स्तंभों पर टिका हुआ है। नामवर सिंह ने 'आलोचना' का संपादन करते हुए हिंदी के आधार-स्तंभ आलोचकों की प्रखरता से परिचित कराया, वहीं दूसरी तरफ कुछ युवा, प्रतिभाओं, प्रखर मस्तिष्क के आलोचनात्मक लेखों को बार-बार प्रकाशित कर उन्हें प्रोत्साहित किया, कई युवा-प्रतिभाओं को हिंदी आलोचना से परिचित कराया। कुछ ऐसे आलोचकों से वे बार-बार अनुरोध करके लेख आदि लिखवा लेते थे, जो मूलतः आलोचना के क्षेत्र से न जुड़कर साहित्य की अन्य विधाओं से जुड़े होते थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने समवयस्कों को 'आलोचना' में निरंतर लिखते रहने का आग्रह किया। 'आलोचना' में प्रकाशित प्रमुख आलोचकों में रमेशकुंतल मेघ, परमानंद श्रीवास्तव, नंदकिशोर नवल, विजयमोहन सिंह, विष्णुखरे, मैनेजर पांडेय, नेमिचंद्र जैन, प्रयाग शुक्ल, विश्वनाथ त्रिपाठी, मलयज, सुरेंद्र चौधरी, नित्यानंद तिवारी, अशोक वाजपेयी, रमेशचंद्र शाह, विजयदेवनारायण साही, राममूर्ति त्रिपाठी,

वागीश शुक्ल, मनोहर काले, इंद्रनाथ मदान, बच्चन सिंह गोपालराय, नरनारायण राय, पी. सी. जोशी, सत्येंद्र कुमार तनेजा, मधुरेश, रामस्वरूप चतुर्वेदी, विश्वनाथप्रसाद तिवारी, राजनाथ, रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, शिवकुमार मिश्र, पुरुषोत्तम अग्रवाल, वीरभारत तलवार, प्रदीप सक्सेना, शंभुनाथ, खगेंद्र ठाकुर, रामबक्ष, आदि के साथ-साथ राजेंद्र यादव, मलयज, कृष्णा सोबती, केदारनाथ सिंह, शमशेरबहादुर सिंह, आदि प्रमुख कवि-कहानीकार भी आलोचना में आलोचक के रूप में उपस्थित रहे हैं। उपर्युक्त सूची को देखकर ही विश्वनाथ त्रिपाठी ने यह वक्तव्य दिया होगा कि"एकाध को छोड़कर इस वक़्त जितने भी हिंदी के दिग्गज आलोचक दिखाई देते हैं, उनको नामवर जी ने ही उंगली पकड़कर चलाना सिखाया है। अपनी पत्रिका 'आलोचना' में छाप-छापकर, उनसे जबरन लिखवाकर आलोचक बनाया है।... नामवर सिंह के बाद जो आलोचक हैं वो नामवर सिंह के जेब से निकले हैं। कम-से-कम मैं तो खुद के बारे में यही मानता हूँ, साथ ही मैनेजर पांडेय, नंदकिशोर नवल, खगेंद्र ठाकुर, सुरेंद्र चौधरी, पुरुषोत्तम अग्रवाल के बारे में भी यही मानता हूँ।"[23] कहा जा सकता है कि जिसने इतने आलोचकों को बनाने में अपनी महत्तम भूमिका का निर्वाह किया है वह स्वयं कितना बड़ा आलोचक होगा., और उसके द्वारा संपादित पत्रिका ने कितनों का आलोचनात्मक विवेक बनाया होगा। इसलिए कहा जा सकता है कि 'आलोचना' का हिंदी आलोचना के विकास में अन्यतम योगदान है, और 'आलोचना' हिंदी की आलोचनात्मक विवेक की पत्रिका है।

संदर्भ :

1. त्रिपाठी, विश्वनाथ. हिंदी आलोचना. छात्र संस्करण-आठवीं आवृत्ति. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2004. पृ. सं. 22.
2. जैन, निर्मला. हिंदी आलोचना की बीसवीं सदी. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 1992. पृ. सं. 11.
3. वहीं. पृ. सं. 10.
4. त्रिपाठी, विश्वनाथ. (साक्षात्कार कर्त्ता) "आधी सदी : आधा साहित्य." (साक्षात्कार) नामवर सिंह कहना न होगा. संकलन-संपा. समीक्षा ठाकुर. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 1995. पृ. सं. 242.
5. श्रीवास्तव, परमानंद. "नामवर सिंह का आलोचनात्मक संघर्ष और 'आलोचना' का संपादन." नामवर के विमर्श. संपा. सुधीश पचौरी. नई दिल्ली : प्रवीण प्रकाशन, 1995. पृ. सं. 335.
6. सिंह, नामवर. आत्मकथा-2. "रचना और आलोचना के पथ पर" 'तद्भव' (अंक-03) (संपा. अखिलेश) अप्रैल, 2000 : पृ. सं. 15.
7. वही. पृ. सं. 15.
8. मिश्र, शिवकुमार. "मार्क्सवादी आलोचना के बुनियादी सरोकार और डॉ0 रामविलास शर्मा." 'आलोचना' (नवांक-60-61) जनवरी-जून, 1982 : पृ. सं. 136.
9. वही. पृ. सं. 136.
10. सिंह, नामवर. "परंपरा का मूल्यांकन का मार्क्सवादी पक्ष". (व्याख्यान) 'पहल' (अंक-26) (संपा. ज्ञानरंजन) फरवरी, 1984 : पृ. सं. 100-101.
11. सिंह नामवर. (साक्षात्कार) "एक आलोचक के रूप में मेरी सबसे बड़ी मुश्किल अपने संस्कारों से संघर्ष करना है!" (साक्षात्कारकर्त्ता) प्रकाश मनु. बात बात में बात संक. संपा. समीक्षा ठाकुर. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2006. पृ. सं. 71.
12. सिंह, नामवर. आत्मकथा-2. "रचना और आलोचना के पथ पर" 'तद्भव' (अंक-03) (संपा. अखिलेश) अप्रैल, 2000 : पृ. सं. 15.
13. वही, पृ. सं. 15-16.
14. पांडेय, मैनेजर. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका. चंडीगढ़ : हरियाणा साहित्य अकादमी, 1989. समर्पण पृष्ठ.

15. वही. भूमिका. पृ. सं. 14.

16. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2000. पृ. सं. 363.

17. शर्मा, रामविलास. महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण. नई दिल्ली. राजकमल प्रकाशन, 1977. पृ. सं. 270.

18. सक्सेना, प्रदीप. संपादकीय. "जबकि जनशत्रु अधिकाधिक संगठित हो रहे हैं". उदभावना. रामविलास शर्मा महाविशेषांक (अतिथि संपा. प्रदीप सक्सेना) नव-दिसं. 2012 : पृ. सं. 09.

19. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास. (उपसंहार.) 1952. पाँचवीं आवृत्ति. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2003. पृ. सं. 266.

20. सिंह, विजेंद्रनारायण. "सर्वहारा से सहारा तक." पाखी. (संपा. प्रेम भारद्वाज). अक्टूबर, 2010 : पृ. सं. 160.

21. सिंह, नामवर. आत्मकथा-2 "रचना और आलोचना के पथ पर" 'तद्‌भव'. (अंक-03) (संपा. अखिलेश) अप्रैल, 2000 : पृ. सं. 15.

22. वही, पृ. सं. 14.

23. त्रिपाठी, विश्वनाथ. "हम नामवरजी की जेब से निकले आलोचक हैं". पाखी (संपा. प्रेम भारद्वाज), अक्टूबर, 2010 : पृ. सं. 30.